अध्याय–1

दास प्रथा का इतिहास लेखन

वस्तुतः दासता का इतिहास अतिप्राचीन काल से ही विश्व के विभिन्न सभ्यताओं में व्याप्त रहा है। इस प्रथा से भारत भी अछूता नहीं रहा। दास से मूलतः तात्पर्य यह है कि 'दास किसी दूसरे व्यक्ति द्वारा अधिकृत और पूर्णतः या अधिकांशतः अधिकार एवं स्वतन्त्रता से रहित व्यक्ति होता है। इस तरह नियमानुसार वह किसी अन्य व्यक्ति की निजी सम्पत्ति होता है जो अपने स्वामी की इच्छा पर आश्रित रहता है और स्वामी उसे किसी भी प्रकार के कार्य के लिए मजबूर कर सकता है और कम से सिद्धान्ततः तो उसे उसके जीवन से भी वंचित कर सकता है।'[1]

जहाँ तक भारतीय दास प्रथा की बात है तो यद्यपि इस सन्दर्भ में बहुत कुछ लिखा जा चुका है लेकिन उनसे दासता के वास्तविक स्वरूप का यथेष्ट संज्ञान नहीं हो पाता। यह कमजोरी अब तक के भारतीय दास प्रथा पर किए गये कार्यों एवं उनसे निकाले गये निष्कर्षों की गहन समीक्षा से उभरकर सामने आ जाती हैा। भारतीय दासता पर सर्वप्रथम गम्भीर अध्ययन प्रस्तुत करने वालों में मान्टेस्क्यू का नाम लिया जाता है।[2] प्रायः उसके समकालीन आबेरायनाल

का भी नाम लिया जाता है जिन्होंने दक्षिण भारत के कृषि दासों, जिन्हें अछूतों की कोटि में रखा गया था, की दुर्भाग्यपूर्ण अवस्था का चित्रण किया है।[3] 19वीं शताब्दी ई0 में दास प्रथा पर प्रकाशित हुए आबेडुबोइस के शोध सर्वेक्षण में मालाबार के दासों की दयनीय स्थिति का चित्रण करते हुए यह दिखाते हैं कि यह संस्था हिन्दू विधि द्वारा स्वीकृत एक वैधानिक संस्था थी और इसकी जड़ को उन्होंने प्राचीन भारत तक फैली बताया है।[4]

1920 ई0 में स्पिर्डफिक के ''द सोशल आर्गनाईजेशन इन नार्थ–ईस्ट इण्डिया'' नामक ग्रन्थ ने एक अभूतपूर्व सफलता प्राप्त की। उनके अनुसार प्रत्येक बड़ा भूस्वामी तथा समृद्ध व्यापारी दैनिक मजदूरी पर दासों के साथ अतिरिक्त श्रमिक के रूप में ही अन्य श्रमिकों को लगाया करते थे। रिचर्डफिक ने महात्मा बुद्ध एवं उनके बाद के काल में घरेलू दासता के प्रमाण प्रस्तुत करते हुए कृषकों एवं दासों की स्थिति का चित्रण किया है जबकि मेगस्थनीज ने भारत में दास प्रथा के अस्तित्व से ही इन्कार किया था।[5] रिजडेविड ने घरेलू दासता के अस्तित्व को साक्ष्यों के आधार पर पुष्ट करते हुए रोम और यूनान की तरह दासों के बड़े पैमाने पर कृषि एवं खानों में नियोजित करने से अपनी असहमति व्यक्त की। यही नहीं उन्होंने भारतीय दासों की दशा को वहाँ

की अपेक्षा अच्छी बताते हुए यह संभावना व्यक्त की कि मेगस्थनीज को भारत में दास प्रथा इसलिए नहीं दिखाई पड़ी क्योंकि वह पाश्चात्य देशों के दासों को भारतीय सन्दर्भ में ढूँढ़ रहा था।[6] रिजडेविड्स के बाद आर0के0 मुकर्जी ने भी इसी से मिलता–जुलता तर्क प्रस्तुत किया।[7]

प्राचीन भारतीय दासता पर सर्वप्रथम मार्क्सवादी ढांचे की आरोपित करने वाले इतिहासकारों में एस0ए0 डाँगे का नाम लिया जाता है जिन्होंने सर्वप्रथम यह मत व्यक्त किया कि भारत में दासता के सन्दर्भ कोई आकस्मिक घटना के परिणाम नहीं थे। विश्व की अन्य सभ्यताओं की तरह भारत में दासता समाजार्थिक संरचना का आधार थी और भारत आदिम समाज से दास समाज की ओर अभिमुख हुआ था।[8] 1949 में डाँगे ने भारतीय दासता एवं सामन्तवाद की परिभाषा देते हुए लिखा कि ''हम कह सकते हैं कि एक तरफ जहाँ वर्णाश्रम धर्म जाँगल युग की उत्तरवर्ती दशा की न्यायिक–नैतिक अभिव्यक्ति है और साथ ही दासता एवं सभ्यता की अभिव्यक्ति है वहीं दूसरी ओर जाति व्यवस्था भारतीय सामन्तवाद के उद्भव और विकास की द्योतक है।[9] डांगे के अनुसार प्राचीन भारत में दासता उत्पादन का प्रमुख आधार थी और विश्व की अन्य सभ्यताओं से अलग प्रकार की दासता यही नहीं थी।[10]

भारतीय इतिहास पर पैनी दृष्टि अपनाते हुए इतिहास लेखन के प्रति समर्पित डी0बी0 कोसाम्बी ने डाँगे द्वारा प्रस्तुत उपर्युक्त इतिहास की तकनीकी अवधारणा की कटु आलोचना की। लेकिन कोसाम्बी ने भी उत्पादन सम्बन्धों में सेवि वर्ग के निर्माण को एक प्रधान परिवर्तन करार दिया।[11] कोसाम्बी के अनुसार यह सेवि वर्ग प्राचीन भारतीय सामाजिक व्यवस्था में निरन्तर विकसित होता हुआ धीरे–धीरे शूद्रों का सामीप्य ग्रहण कर बैठा। यद्यपि समस्त शूद्रों को दास से समीकृत नहीं किया जा सकता लेकिन दास और शूद्र मिलकर इस सेवि वर्ग का निर्माण करते थे जिनमें कर्मकारों को भी शामिल कर लिया गया। इस प्रकार कोसाम्बी ने प्राचीन भारतीय सामाजिक संरचना की विशिष्टताओं को ढूढ़ते हुए एक सीमा तक दासता की रूपरेखा को निर्धारित करने का प्रयास किया। भारतीय इतिहास में कोसाम्बी ने दासों को उत्पादन पद्यति एवं सामाजिक संरचना से जोड़कर एक ऐसे संतुलित ज्ञान का परिचय दिया जो आगे के इतिहासकारों के लिए मार्गदर्शक सिद्ध हुआ। साथ ही दासों को पण्य वस्तु के रूप में चित्रित करके भविष्य में इनके व्यापार का मार्ग भी प्रस्तुत कर दिया गया।[12] डाँगे एवं कोसाम्बी दोनों की भारतीय समाजार्थिक संरचना में

दासों की भूमिका के अध्ययनों में कुछ कमियों की ओर कतिपय इतिहासकारों ने संकेत किया है।[13]

यू0एन0 घोषाल[14] तथा के0एम0 सरन[15] ने क्रमशः लगभग 200 ई0पू0 से 400ई0 के बीच तथा प्राचीन भारत में श्रम की विभिन्न कोटियों में से एक कोटि के रूप में दासों की चर्चा की है। इन दोनों ने दासों का वर्णन विवरणात्मक पद्धति से ही किया है।

1960 में डी0आर0 चानना ने प्राचीन भारतीय दास प्रथा को समर्पित एक स्वतंत्र ग्रन्थ 'स्लेवरी इन एन्शिऐन्ट इण्डिया' का प्रणयन[16] करके एक ऐसा मील का पत्थर स्थापित किया जो भले ही केवल पालि ग्रन्थों पर आधारित लगभग 500 ई0 तक का दासता का इतिहास अपने में समेटे हुए रहा हो फिर भी आगे आने वाले उन इतिहासकारों जो भारतीय दास प्रथा पर काम करना चाहते थे, के लिए एक अनिवार्यता बन गई। चानना ने पहली बार दास प्रथा पर किये गये इतिहास लेखन का स्वरूप प्रस्तुत करते हुए सैन्धव सभ्यता से लेकर मौर्यों के पतन तक का भारतीय दासता का विशिष्ट अध्ययन प्रस्तुत किया। उन्होंने अपने इस ग्रन्थ में स्मृतियों के हवाले से नारद एवं कात्यायन तक के दासों का अध्यययन का विषय बना लिया है। डी0आर0 चानना ने सेवि वर्ग के अस्तित्व

को स्वीकार करते हुए उसे उत्पादन प्रक्रिया के साथ–साथ युद्ध के साथ भी जोड़ने का प्रयास किया। लेकिन चानना का कार्य कोई ऐसा मौलिक परिवर्तन प्रदर्शित करता हुआ नहीं प्रतीत होता जैसा कि उस काल की भारतीय अर्थव्यवस्था के मौलिक परिवर्तनों में घटित हो रहा था। आर0एस0 शर्मा ने चानना के इस ग्रन्थ की कमियों को उजागर करते हुए यह दिखाया है कि इस ग्रन्थ में भारतीय दासता एक स्थाई भूमिका में खड़ी दिखाई देती है, उसमें कोई हलचल नहीं होती है जबकि प्राचीन भारतीय दासता का स्वरूप समय–समय पर परिवर्तित होता रहा है। समाजार्थिक परिवर्तनों के साथ दासता को जोड़कर अध्ययन करने का प्रयास चानना ने नहीं किया।[17]

1965 में लल्लन जी गोपाल ने अपने एक महत्वपूर्ण ग्रन्थ में पूर्वमध्यकालीन दास प्रथा पर एक अलग अध्याय लिखकर चानना द्वारा छोड़े गये अधूरे पक्ष को कुछ सीमा तक पूरा करने का प्रयास किया।[18] इस प्रयास में उन्होंने पूर्वमध्यकालीन भारत में दासों के प्रमाणों के आधार पर यह मत व्यक्त करने की कोशिश की कि अधीत काल में दासों का आयात–निर्यात हो रहा था। दास एक वस्तु के रूप में बेंचे जा रहे थे। सैकड़ों युद्धों में हजारों की संख्या में युद्धबन्दी दास बनाये जा रहे थे। इसके बावजूद स्मृतियों में

दास–मुक्ति की अनेक व्यवस्थाएं, उनके वैधानिक अधिकार तथा कतिपय अन्य उच्च स्थिति के प्रमाण मिलते हैं। इन प्रमाणों के आधार पर लल्लन जी गोपाल ने यह मत व्यक्त किया कि पूर्व मध्यकालीन भारत में दासों की स्थिति में परिमाणात्मक वृद्धि तो हो रही थी लेकिन गुणात्मक गिरावट का प्रमाण भी विद्यमान था। मानव मूल्यों में गिरावट को संख्यात्मक वृद्धि के साथ स्वीकार करते हुए लल्लन जी गोपाल ने दासों को पूर्वमध्यकाल में कृषि एवं अन्य उत्पादन कार्यों में संलग्न दिखाते हुए अशुभ कर्मों से दासों के पार्थक्य को दिखाने का प्रयास किया।[19]

प्राचीन भारतीय समाजार्थिक इतिहास लेखन में क्रान्तिकारी परिवर्तनों के लिए आर0एस0 शर्मा द्वारा किये गये योगदान को इस अवसर पर विस्मृत नहीं किया जा सकता। यद्यपि उन्होंने भारतीय दास प्रथा पर अलग से कार्य नहीं किया लेकिन अपने अनेक ऐतिहासिक मानक ग्रन्थों में सामन्ती समाज की अर्थव्यवस्था के अभ्युदय के लिए दास श्रम की आवश्यकता को महसूस करते हुए भारतीय दासता पर बहुत कुछ लिखा है।[20] उन्होंने उत्पादन पद्धति और सेवि वर्ग के बीच अटूट रिश्ता कायम करते हुए सेवि वर्ग को अधिकांशतया ऐसे शूद्रों से निर्मित बताया जो दास थे। ऐसी विद्वतापूर्ण संकल्पनाओं में

उन्होंने दासों एवं शूद्रों के बीच में कोई मौलिक अन्तर नहीं रखा है। डी0डी0 कोसाम्बी द्वारा अपनाए गये रास्ते को आगे बढ़ाते हुए आर0एस0 शर्मा ने यह मत व्यक्त किया कि पूर्वमध्यकालीन भारत में दासता का स्वरूप ह्रासोन्मुख हो गया था जिसके कारणों की चर्चा करते हुए उन्होंने लिखा है कि अधीत काल में दासों में वर्ग चेतना का संचार हो रहा था, उनकी मुक्ति के विधान बनाए जा चुके थे तथा दासों को केवल अशुभ कर्मों में नियोजित करके शुभत्व की सीमा में आने वाले कार्यों से उन्हें पृथक कर दिया गया था और विशुद्ध रूप से घरेलू दासता अधीत काल में प्रचलित थी। इस युग में आकर अतिरिक्त उत्पादन दास श्रम पर आधारित न होकर बेगार श्रम पर आधारित हो गया और इस प्रकार अर्थव्यवस्था के ढाँचे के ढह जाने के बाद उसके बिखरे हुए टुकड़ों पर सामन्ती समाज और अर्थव्यवस्था की शानदार इमारत खड़ी हो गई। इस प्रकार आर0एस0 शर्मा ने पहली बार भारतीय दास प्रथा को ऐतिहासिक भौतिकवादी विकास की प्रक्रिया से जोड़कर एक ऐसे युग का सूत्रपात किया जिसका अधिकांश इतिहासकारों ने अनुकरण करने का प्रयास किया लेकिन इतिहासकारों का एक दूसरा वर्ग ऐसा भी था जो इन प्रतिस्थापनाओं से अपनी

साक्ष्य सम्मत अहसमति व्यक्त करते हुए दासों को ऐसी किसी भी संरचना के लिए आवश्यक नहीं मानता।[21]

जे0डी0एम0 डेरेट[22], पी0सी0 जैन[23] तथा डी0एन0 गांगुली[24] ने भारतीय दास प्रथा पर कुछ प्रकाश डाला है। डेरेट ने दासों के वैधानिक पक्ष को उभारा तथा पी0सी0 जैन ने के0एम0 सरन की तर्ज पर श्रमिको की एक कोटि के रूप में दासों का एक रूप प्रस्तुत किया जबकि गांगुली ने ब्रिटिश काल की भारतीय दासता का चित्र उपस्थित किया है।

बी0एन0एस0 यादव[25] ने पहली बार प्राचीन भारतीय समाजार्थिक संरचना में सामन्तवादी प्रवृत्तियों को ढूंढते हुए स्वामी–सेवक सम्बन्ध को सामन्तवाद की अवधारणा का एक मुख्य तत्व माना है। इनके अनुसार पूर्व मध्यकाल में राजनीतिक अस्थिरता, व्यापार एवं वाणिज्य में आने वाली गिरावट के कारण कृषकों के कृषि दासत्व की प्रवृत्ति भी जोर पकड़ने लगी। पूर्व मध्यकालीन ताम्रपत्रों एवं प्रस्तर लेखों में घने जंगलों एवं कबायली इलाकों में ब्राह्मणों को भूमिदान एवं ग्रामदान बड़े पैमाने पर दिये जाने लगे। स्पष्टतः नई भूमि खेती योग्य बनाई जा रही थी और इसी के साथ–साथ वर्ण व्यवस्था की परिधि के बाहर कबायली जनसंख्या भी खेती–बाड़ी में उनके योगदान के माध्यम से वर्ण

व्यवस्था के अन्दर धीरे–धीरे लाई जा रही थी। इनके अनुसार इस प्रक्रिया ने कृषकों के कृषि–दासत्व की प्रवृत्ति को बढ़वा दिया होगा।[26] पूर्व मध्यकालीन दान पत्रों में दिखाई पड़ने वाली कतिपय प्रवृत्तियों के आधार पर आर0एस0 शर्मा यह निष्कर्ष निकालते हैं कि भूमि दानों के माध्यम से समाज में एक मध्यस्थ हिताधिकारी वर्ग की सृष्टि हो गई जिसने कृषकों पर अपने शोषण का शिकंजा कस लिया और उन्हें अपनी अनार्थिक जोर जबरदस्ती का शिकार बनाकर धीरे–धीरे कृषि दासत्व को सोचनीय स्थिति में पहुँचा दिया। इस प्रकार भूमिदानों के माध्यम से होने वाला खेतों का यह प्रसार कृषकों की कीमत पर हुआ जिसके अन्तर्गत बेगार श्रम दास श्रम का स्थान ले रहा था और कृषकों को कृषि दासत्व की ओर ढकेलता जा रहा था।[27] बी0एन0एस0 यादव ने आर0एस0 शर्मा द्वारा निकाले हुए इन निष्कर्षों से अपनी सहमति व्यक्त करते हुए पूर्वमध्यकालीन भारतीय दासता के स्वरूप को ह्रासोन्मुखी बताया है। इन्होंने पहली बार ज्योतिष ग्रन्थों के आधार पर पूर्व मध्यकालीन भारतीय दासता को अपने पूर्व स्थापित प्रतिमानों में पिरोकर एक ऐसा ढाँचा खड़ा किया जिसमें प्रेष्य, भृतक, दास, कर्मकार, बन्धकों तथा अन्य सेवि वर्गों के बीच कोई बहुत बड़ा अन्तर नहीं दिखाई पड़ता।[28] जी0आर0 कुप्पूस्वामी ने कर्नाटक की आर्थिक

दशा का चित्रण करते हुए भारतीय दासता के कतिपय पक्षों पर प्रकाश डाला है।[29] अपने इस प्रणयन में उन्होंने यह दिखने का प्रयास किया है कि सामान्य व्यक्ति को विपन्नावस्था में कभी–कभी दासता में घसीट लिया जाता था। बी0डी0 चट्टोपाध्याय[30] ने इसकी समीक्षा करते हुए लिखा है कि इस लेखक ने दासों की एक ऐसी अवधारणा लागू करने की कोशिश की है जो पूर्व मध्यकालीन कर्नाटक की अर्थव्यवस्था को विकास की प्रक्रियाओं से उसे दूर ले जाती है। 1976 में सन्ध्या मुखर्जी ने अपने मानक ग्रन्थ में दासों के ऊपर एक अलग अध्याय जोड़ा।[31] के0एस0 श्रीमाली[32] ने दासता पर जोड़े गये इस अध्याय को एक सर्वोत्कृष्ट प्रयास बताया है। सन्ध्या मुखर्जी ने एक तरफ कोसाम्बी की दासता विषयक अवधारणा पर चिन्तन करते हुए भारतीय दासों के प्रति अमानवीय व्यवहार को उजागर करने का प्रयास किया है। साथ ही यह मत व्यक्त किया है कि भारत में दासों की कोई जाति नहीं थी और स्मृतियों द्वारा किसी जाति आधारित दास समाज के अस्तित्व को इन्कार किया है। आधुनिक सन्दर्भों के मौलिक अधिकारों की तरह दासों के कतिपय वैधानिक अधिकारों की चर्चा भी इन्होंने की है। अमल कुमार चट्टोपाध्याय ने आधुनिक बंगाल के दासों पर एक अध्ययन प्रस्तुत किया है। अपने इस प्रयास में उन्होंने

यह दिखाया है कि बंगाल में कृषि में दासों का विशाल पैमाने पर नियोजन होता था[33] जबकि कुछ इतिहासकारों ने इस संभावना से इन्कार किया है।

1981 में भारत में बेगार प्रथा पर एक नवीन ग्रन्थ जी0के0 राय[34] द्वारा प्रस्तुत किया गया जो 'नई बोतल में पुरानी शराब' भरने जैसा है। अपने इस महत्वपूर्ण ग्रन्थ में उन्होंने यह दिखाने का प्रयास किया है कि पूर्वमध्यकालीन भारत में दास प्रथा पतनोन्मुख थी और उसका स्थान विष्टि ने ले लिया था। विष्टि और बेगार एक दूसरे के पर्यायवाची है। डी0सी0 सरकार[35] ने इससे इनकार करते हुए विष्टि को सही अर्थों में समझने की आवश्यकता पर जोर दिया। जी0के0 राय ने अर्थशास्त्र में उल्लेखित विष्टि को बेगार श्रम के रूप में चित्रित करते हुए यह मान्यता स्थापित की कि 600 से 1200 ई0 में भारत के बीच न तो कोई सम्पन्न राज्य था और न ही कोई शक्तिशाली अधिपति।[36] 1982 में दो महत्वपूर्ण ग्रन्थ भारतीय दासता के सन्दर्भ में प्रकाशित हुए जो एस0 मनिकम् तथा शीला चतुर्वेदी द्वारा क्रमशः तमिल देश की दासता[37] एवं तुर्ककालीन भारत की मुस्लिम दासता[38] से सम्बन्धित थे। एस0 मनिकम ने दासता का क्षेत्रीय इतिहास उभारने का प्रयास किया और शीला चतुर्वेदी ने तुर्ककालीन भारत को मुस्लिम दासता को अपना लक्ष्य बनाया। इस ग्रन्थ में

चतुर्वेदी ने केवल राजकीय दासों की चर्चा की है, सामान्य दासों की चर्चा जाने–अनजाने यत्र–तत्र दिखाई पड़ जाती है। इन्होंने मुस्लिम दासता को विशिष्ट कोटि की दासता बताने का प्रयास किया जो कतिपय इतिहासकारों द्वारा स्वीकार नहीं किया जाता।

अजय मित्र शास्त्री ने आर0एस0 शर्मा के इस कथन पर आपत्ति दर्ज की कि छठीं शताब्दी ई0पू0 से लेकर पांचवी शताब्दी ई0 के बीच उत्पादन की प्रमुख जिम्मेदारी वैश्यों पर थी जो शूद्र दासों एवं वेतनभोगी श्रमिकों के श्रम से अनुपूरित थी।[39] अजय मित्र शास्त्री ने यह मत व्यक्त किया कि भारत में सामन्तवाद के अभ्युदय के जिन क्षणों में दास श्रम की कृषि के क्षेत्र में अनावश्यक बताया जा रहा था, उस युग में दासों की कृषि के क्षेत्र में अवश्य ही लगाया जाता रहा होगा।[40] इन्होंने यह प्रश्न उठाया है कि सैकड़ों की संख्या में वे दास जो विनिमय के संसाधनों के रूप में प्रसिद्ध थे यदि कृषि कार्य में नियोजित नहीं किये जाते थे तो उनकी इतनी बड़ी संख्या को किस क्षेत्र में खपाया जाता था। व्यक्तिगत पैमाने पर इतने अधिक दासों को केवल घरेलू कार्यों एवं जानवर चराने के कार्यों में नहीं खपाया जा सकता था।[41]

1984 में श्रम के राजस्वीय संदोहन से सम्बन्धित एक अलग अध्याय को अपने मानक ग्रन्थ की विषय–वस्तु बनाकर डी0एन0 शुक्ल ने इतिहास में कतिय नवीन अध्यायों का सृजन किया।[42] इस प्रयास में उन्होंने दास श्रमिकों को एक प्रमुख कोटि मानते हुए इतिहासकारों की उस स्थापना से असहमति व्यक्त की कि दासता पूर्वमध्य युग में घट रही थी। जहाँ एक ओर दास व्यापार से राजस्व में वृद्धि का नवीन आयाम उपस्थित किया है[43] वहीं बेगार श्रम को दास श्रम के बीच एक मध्यवर्ती श्रम की एक कोटि बताया है जिसका जी0सी0 पाण्डे[44] ने अप्रत्यक्षतः समर्थन भी किया है।

1985 में उत्स पटनायक द्वारा सम्पादित एक नवीन कृति[45] सामने आई जिसमें प्राचीन भारतीय दास, कर्मकर एवं सेवि वर्ग से सम्बन्धित एक महत्वपूर्ण अध्याय उमा चक्रवर्ती द्वारा प्रस्तुत किया गया जिसके अन्तर्गत उन्होंने प्राचीन भारतीय दासता को ऐतिहासिक दासता तथा उत्पादन से उसके सम्बन्ध को निरूपित करने का प्रयास किया। उमा चक्रवर्ती के निष्कर्ष आर0एस0 शर्मा द्वारा निःसृत निष्कर्षों से आगे नहीं जा पाते।

1987 में डी0एन0 झा ने अपनी एक सम्पादित कृति[46] में दासों के कतिपय महत्वपूर्ण पक्षों पर आंशिक प्रकाश डाला है। डी0एन0 झा ने पूर्व

मध्यकालीन भारत में दासता के उल्लेखों के आधार पर भारतीय समाजार्थिक संरचना का जो स्वरूप प्रस्तुत किया वह आर0एस0 शर्मा के निष्कर्षों से मेल खाता हुआ दिखाई पड़ता है।[47] इतिहास की मार्क्सवादी अवधारण के प्रति अधिक जागरूकता दिखाते हुए डी0एन0 झा भारतीय सामन्तवाद का उद्‌भव समाजार्थिक व्यवस्था के अन्तर्विरोधों से दिखाने के प्रयास में कलियुग वृत्तान्त की पौराणिक परम्परा में मौर्य वंश के काल में होने वाले कृषि–प्रसार के कारण भूमि पर बढ़ते हुए दबाव से उत्पन्न वर्ग संघर्ष की झलक देखते हैं।[48]

डी0एन0 झा ने कार्ल विटफागेल की 'द्रवचालित समाज' की संकल्पनाओं के आधार पर दासों के उपयोग को कृषि के क्षेत्र में आवश्यक एवं अनावश्यक जैसी जहाँ आवश्यकता पड़ी दिखाने का प्रयास किया। एस0पी0 तिवारी[49] ने राजकीय परिचरों पर एक महत्वपूर्ण ग्रन्थ प्रकाशित किया जिसके अन्तर्गत उन्होंने एक ऐसी वृहत्तर संकल्पना प्रस्तुत की जिसके अन्तर्गत प्रायः समस्त परिचरों एवं अनुचरों को दासों के रूप में अप्रत्यक्षतः चित्रित कर दिया गया।

1988 में ओमप्रकाश ने पूर्वकालीन भारतीय अनुदान पत्रों एवं राज्य अर्थव्यवस्था पर एक महत्वपूर्ण ग्रन्थ प्रकाशित किया जिसमें उन्होंने अभिलेखों

के आधार पर यह दिखाने का प्रयास किया है कि भारत में व्यक्तिगत भू–स्वामित्व एवं सामुदायिक भू–स्वामित्व की मार्क्सवादी अवधारणाओं में कतिपय सुधार की आवश्यकता है। सामुदायिक भू–स्वामित्व और व्यक्तिगत भू–स्वामित्व में दासों के विभिन्न कार्यों में नियोजन पर भी अप्रत्यक्ष रूप से कुछ प्रकाश डाला है।[50] 1992 में इतिहास की विभिन्न अवधारणाओं का सूक्ष्म विश्लेषण करता हुआ एक दूसरा ग्रन्थ इनके द्वारा प्रस्तुत किया गया जिसमें स्पष्टतया यह रेखांकित किया गया है कि भारतीय समाजार्थिक संरचना में न तो मार्क्स की 'एशियाई उत्पादन पद्धति' की योजना लागू होती है और न ही पाश्चात्य देशों के लिए उसके द्वारा बनाई गई ऐतिहासिक विकास की अवधारणा ही लागू होती है।[51]

1992 में भारतीय इतिहास अनुसंधान परिषद, नई दिल्ली ने 'द इण्डियन हिस्टारिकल रिव्यू' के 'द वर्ल्ड आफ स्लेवरी' नामक विशेषांक[52] में भारतीय दास प्रथा पर तीन महत्वपूर्ण शोध लेख एवं दस्तावेज प्रस्तुत किये जो इरफान हबीब एवं पुष्पा प्रसाद तथा उमा चक्रवर्ती के योगदान का हवाला देते हैं।

भारतीय दास–लेखन पर प्रस्तुत किये गये उपर्युक्त ऐतिहासिक विवेचनों से यह स्पष्ट हो जाता है कि भारत के प्राचीन कालीन सन्दर्भ में दास प्रथा पर

कोई स्वतन्त्र ग्रन्थ नहीं लिखा गया। केवल छिट–पुट विवरणों में ही अनेकों मान्यताएं बिखरी पड़ी है। प्राचीन कालीन के समग्र अध्ययन से सम्बन्धित यह शोध प्रबन्ध इसी रिक्ति को भरने का एक उपक्रम है, साथ ही यह दासों के सम्बन्ध में पूर्व प्रतिस्थापित मान्यताओं को वास्तविक ऐतिहासिक स्रोतों के आलोक में देखने एवं समझने का एक उत्तम प्रयास है।

सन्दर्भ एवं टिप्पणियां

1. फिनले, एम.आई., स्लेवरी इन क्लासिकल एन्टिक्विटी, 1961
2. चानना, डी0आर0, स्लेवरी इन एन्श्येण्ट इण्डिया, दिल्ली, 1960, पृ0 1
3. वही
4. वही, पृ0 2
5. पिक, आर0, द सोशल आर्गनाइजेशन इन नार्थ–ईस्ट इण्डिया, कलकत्ता, 1920, पृ0 305–312
6. डेविड, आर, कैम्ब्रिज हिस्ट्री आफ इण्डिया, जिल्द 1, पृष्ठ 56
7. मुकर्जी, आर0के, ऐन्श्येण्ट इण्डियन एजूकेशन, लंदन, 1951, 423 तथा 469
8. डाँगे, एस0ए0, इण्डिया फ्राम प्रिमिटिव कम्युनिज्म टु स्लेवरी (हिन्दी संस्करण), दिल्ली, 1978, पृ0 48–56
9. पाटिल, शरद, दास–शूद्र स्लेवरी, दिल्ली, 1982, पृ0 71
10. वही
11. कोसाम्बी, डी0डी0, ऐन इन्ट्रोडक्शन टु द स्टडी आफ इण्डियन हिस्ट्री, बम्बई, 1975, पृ0 97–98
12. पाटिल, शरद, पूर्वोक्त, पृ0 8–10
13. वही

14. घोषाल, यू0एन0, स्टडीज इन इण्डियन हिस्ट्री एण्ड कल्चर, कलकत्ता, 1957
15. सरन, के0एम0, लेबर इन ऐन्श्येण्ट इण्डिया, बम्बई, 1957
16. डी0आ0 चानना, पूर्वोक्त
17. शर्मा, आर0एस0, पूर्वोक्त
18. गोपाल, लल्लन जी, द इकानमिक लाइफ नार्दर्न इण्डिया, वाराणसी, 1965, पृ0 78–80
19. वही
20. शर्मा, आर0एस0, शूद्रों का प्राचीन इतिहास, दिल्ली
21. ऐसे इतिहासकारों में डी0सी0 सरकार, हरबंस मुखिया तथा ओमप्रकाश आदि के नाम लिये जा सकते हैं।
22. डेरेह, जे0डी0एम0, रिलिजन, ला एण्ड द स्टेट इन इण्डिया, लंदन, 1968
23. जैन, पी0सी0, लेबर इन एन्श्येण्ट इण्डिया
24. गांगुली, डी0एन, स्लेवरी इन डामिनियन, कलकत्ता, 1972
25. यादव, बी0एन0एस0, सोसाइटी एण्ड कल्चर इन नार्दर्न इण्डिया इन द ट्वेल्थ सेन्चुरी ए0डी0, इलाहाबाद, 1973, पृ0 73–74 तथा 'कलियुग के वर्णन और समाज का प्राचीन काल से मध्यकाल में संक्रमण', इतिहास, अंक 1, दिल्ली, 1992 एवं 'द प्राब्लम आफ द इमरजेन्स आफ फ्यूडल रिलेशन्स इन अर्ली इण्डिया', अध्यक्षीय भाषण, इण्डियन हिस्ट्री कांग्रेस, बम्बई, 1980

26. ओमप्रकाश तथा अन्य, राजनीतिक इतिहास तथा संस्थाएं, 550 ई0 से 1200 ई0 तक, भोपाल, 1990, पृ0 213

27. वही, पृष्ठ 216

28. यादव, बी0एन0एस0, अध्यक्षीय भाषण, पूर्वोक्त

29. कुप्पूस्वामी, जी0आर0, इकानमिक कन्डीशन्स इन कर्नाटका, धारवाड, पृ0 185–197

30. चट्टोपाध्याय, बी0डी0, इण्डियन हिस्टारिकल रिव्यू जिल्द 4, नं0 1, पृ0 143

31. मुखर्जी, सन्ध्या, सम आस्पेक्ट्स आफ सोशल लाइफ इन इण्डिया, इलाहाबाद, 1967, पृ0 175–190 तथा 203

32. श्रीमाली, के0एम0, द इण्डियन हिस्टारिलक रिव्यू, जिल्द 4, अंक 2, पृ0 435

33. चट्टोपाध्याय, ए0के0, स्लेवरी इन इण्डिया, लंदन, 1977

34. राय, जी0के0, इन्वालन्ट्री लेबर इन ऐन्श्येण्ट इण्डिया, इलाहाबाद, 1981

35. सरकार, डी0सी0, इण्डियन हिस्टारिकल रिव्यू

36. वही

37. मनिकम्, एम0, स्लेवरी इन तमिल कन्ट्री : ए हिस्टारिकल ओवरव्यू, मद्रास, 1982

38. चतुर्वेदी, शीला, तुर्ककालीन भारत में मुस्लिम दासता, दिल्ली, 1982

39. शास्त्री, अजयमित्र, द इण्डियन हिस्टारिकल रिव्यू, जिल्द 9, पृ0 233–235

40. वही

41. वही

42. शुक्ल, डी0एन, उत्तर भारत की राजस्व व्यवस्था, इलाहाबाद, 1984

43. वही, पृ0 151

44. पाण्डे, जी0सी0, द इण्डियन हिस्टारिकल रिव्यू, 1984, पृ0 182

45. पटनायक,उत्स (संपा.), चेन्स आफ सर्विट्यूड : बान्डेज एण्ड स्लेवरी इन इण्डिया, मद्रास, 1985 में उमा चक्रवर्ती का लेख, पृ0 1–75

46. झा, डी0एन0, फ्यूडल फार्मेशन इन अर्ली इण्डिया, दिल्ली, 1982

47. ओमप्रकाश तथा अन्य, पूर्वोक्त, पृ0 236

48. वही

49. तिवारी, एस0पी0, रॉयल अटेन्डेन्ट्स इन एन्श्मेण्ट इण्डियन लिटरेचर, एपिग्राफी एण्ड आर्ट, 1982

50. ओमप्रकाश, अर्ली इण्डियन लैण्डग्रान्ट्स एण्ड स्टेट इकानमी, इलाहाबाद, 1988

51. ओमप्रकाश, कन्सेप्चुअलाईजेशन एण्ड हिस्ट्री इन अर्ली इण्डियन सोशियो, इकानमिक स्टडीज, इलाहाबाद, 1992

52. इण्डियन हिस्टारिकल रिव्यू, जिल्द 15, दिल्ली, 1992